प्रकीर्णक-साहित्य : एक परिचय

डॉ. सुषमा सिंघवी

प्रकीर्णक–साहित्य भी जैन आगम वाङ्मय का मुक्तामणि है। एक–एक प्रकीर्णक प्राय: एक विषय को प्रधान बनाकर उसका विवेचन करता है। इनमें समाधिमरण, देवविमान, गर्भजन्म, खगोलविद्या, ज्योतिर्विज्ञान एवं आध्यात्मिक उन्नयन के सूत्रों की चर्चा है। कोटा खुला विश्वविद्यालय के उदयपुर केन्द्र की निदेशक एवं जैनविद्या में निष्णात डॉ. सुषमा जी ने अपने आलेख में प्रकीर्णकों के संबंध में आवश्यक चर्चा करते हुए कतिपय प्रकीर्णकों की विषयवस्तु से अवगत कराया है। — **सम्पादक**

उमास्वाति और देववाचक के समय अंग आगमों के अतिरिक्त शेष सभी आगमों को प्रकीर्णकों में समाहित किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि जैन आगम साहित्य में प्रकीर्णकों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अरिहन्त के उपदिष्ट श्रुतों के आधार पर श्रमणनिर्ग्रन्थ भक्ति–भावना तथा श्रद्धावश मूल भावना से दूर न रहते हुए जिन ग्रन्थों का निर्माण करते हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। प्रकीर्णक को परिभाषित करते हुए नंदिसूत्र–चूर्णिकार कहते हैं **'अरहंतमग्गउवदिट्ठे जं सुत्तमणुसरित्ता किंचि णिज्जूहंते (निर्यूढ) ते सव्वे पइण्णग्गा; अहवा सुत्तमणुसरतो अप्पणो वयणकोसल्लेण जं धम्मदेसणादिसु (गंथपद्धतिणा) भासंते तं सव्वं पइण्णग'**[१] प्रकीर्णक एक पारिभाषिक शब्द प्रयोग है जिसके अन्तर्गत परिगणित प्रत्येक ग्रन्थ में प्राय: एक विशिष्ट विषयवस्तु सुसंहत है जो आगम सूत्रों के अनुसार प्रतिपादित है।

भगवान् ऋषभदेव से लेकर श्रमण भगवान महावीर तक विद्वान् स्थविर साधुओं ने स्वबुद्धि कौशल से धर्म तथा जैन तत्त्व ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने की दृष्टि से तथा कर्म-निर्जरा के उद्देश्य से प्रकीर्णकों की रचना की। नंदिसूत्रकार ने प्रकीर्णकों की सूचि के अन्त में **'एवमाइयाइं चउरासीती पइण्णगसहस्साइं भगवतो अरहओ उसहस्स' कहा।**[२] समवायांग सूत्र में भी 'प्रकीर्णक' के उल्लेख के अवसर पर भगवान् ऋषभदेव के ८४ हजार शिष्यों द्वारा रचित ८४००० प्रकीर्णक होने का निरूपण है। नंदिसूत्र के अनुसार तीर्थंकरों की जितनी श्रमण सम्पदा (उत्कृष्ट चार प्रकार की बुद्धि वाले दिव्य ज्ञानी साधु शिष्य अथवा प्रत्येक बुद्ध) उतनी ही प्रकीर्णकों की संख्या है। इस प्रकार भगवान् महावीर के चौदह हजार प्रकीर्णक होते हैं। स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान में भी इन प्रकीर्णकों के कुछ नामोल्लेख मिलते हैं।[३] व्यवहारसूत्र के दसवें उद्देशक में भी १९ प्रकीर्णकों का नामोल्लेख है।[४] पाक्षिक सूत्र में प्रकीर्णकों की जो सूचि है[५] वह नंदिसूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अनुरूप ही है तथापि उसमें गणिविद्या के स्थान पर आणविभत्ति नाम है, सूर्यप्रज्ञप्ति को वहाँ कालिकसूत्र में गिना है और नंदिसूत्र के अतिरिक्त भी ७ और नाम वहाँ हैं जिनका उल्लेख स्थानांग व व्यवहारसूत्र में है।

षट्खण्डागम की धवलाटीका में भी १९ प्रकीर्णकों के नाम हैं। इसमें १२ अंग आगमों से भिन्न अंगबाह्य ग्रन्थों को प्रकीर्णक संज्ञा दी है — 'अंगबाहिरचोद्दस पइण्णयज्झाया', उसमें उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, ऋषिभाषित आदि को भी प्रकीर्णक ही कहा गया है।[६] प्रकीर्णकों के कुछ नाम जोगनंदी और विधिमार्गप्रपा नामक प्राचीन रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं।[७] ऋषिभाषित का सन्दर्भ समवायांग, तत्त्वार्थस्वोपज्ञभाष्य आदि में भी प्राप्त होता है।

नंदिसूत्र, स्थानांगसूत्र, व्यवहारसूत्र, धवला, पाक्षिक आदि सूत्रों में गिनाए गये अनेक ग्रन्थों का क्रमशः विच्छेद होता रहा, साथ ही कई श्रेण्य मान्य शास्त्रग्रन्थ प्रकीर्णकों की श्रेणी में जुड़ते भी गये अतः सर्वमान्य रूप से प्रकीर्णकों की संख्या निश्चित नहीं हो सकी। ग्यारह अंग, बारहवें दृष्टिवाद और आवश्यक सूत्रों के नामों के बारे में कोई विवाद नहीं रहा और इन्हें कभी प्रकीर्णक संज्ञा भी नहीं दी गई। नंदिसूत्र में वर्णित जैन आगम साहित्य के वर्गीकरण के अनुसार प्रकीर्णकों के रूप में स्वीकृत नौ ग्रन्थ कालिक और उत्कालिक इन दो विभागों के अन्तर्गत उल्लिखित हैं—

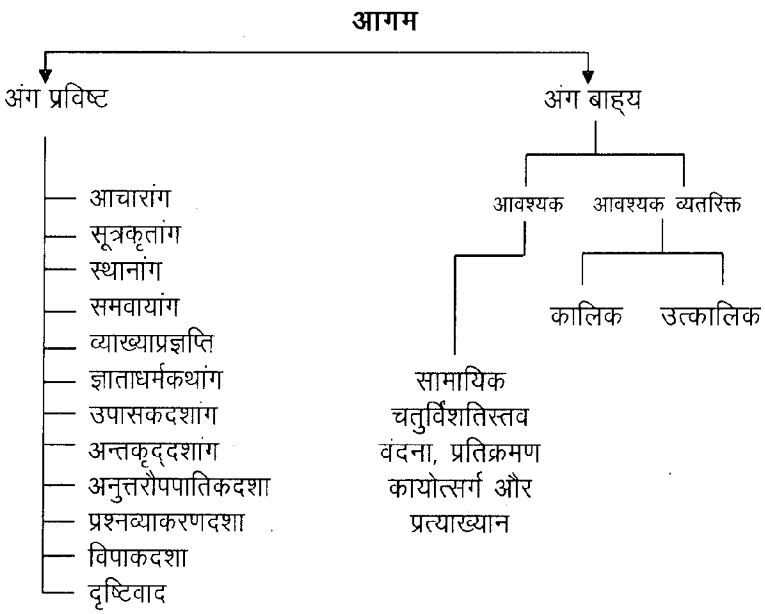

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालिक के अन्तर्गत ऋषिभाषित और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति इन दो प्रकीर्णकों का उल्लेख मिलता है तथा उत्कालिक के अन्तर्गत देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, गणिविद्या, आतुर– प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और मरण विभक्ति इन सात प्रकीर्णकों का उल्लेख है। प्राचीन आगमों में प्रकीर्णकों का नामोल्लेख होने पर भी उन्हें अंग–प्रविष्ट आगम' आदि की तरह 'प्रकीर्णक' श्रेणी में विभाजित नहीं किया गया था। सर्वप्रथम आचार्य जिनप्रभ के विधिमार्गप्रपा में आगमों का अंग, उपांग, छेद, मूल, चूलिका और प्रकीर्णक के रूप में उल्लेख मिलता है।

नंदिसूत्र में अंग आगम, आवश्यक व प्रकीर्णकों को स्वाध्याय समय की अपेक्षा कालिक एवं उत्कालिक ऐसे दो भागों में बाँटा गया था, किन्तु कालान्तर में इन प्रकीर्णकों के बारे में दो महत्त्वपूर्ण परिपाटियाँ क्रमशः विकसित हुई :—

(१) इन प्रकीर्णकों को भी आगम का दर्जा दिया गया।

(२) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विषयादि की अपेक्षाओं से इन प्रकीर्णकों का वर्गीकरण भी हुआ जैसे — १२ प्रकीर्णकों को उपांग सूत्रों के समकक्ष, ६ प्रकीर्णकों को छेद सूत्रों के समकक्ष तथा ६ प्रकीर्णकों को मूलसूत्रों के समकक्ष रखा गया तथा शेष अवर्गीकृत प्रकीर्णकों को प्रकीर्णक-आगम के नाम से ही पुकारा जाने लगा।

श्वेताम्बर परम्परा में मंदिरमार्गी ४५ आगम (११ अंग + १२ उपांग + ६ छेद + ६ मूल + १० प्रकीर्णक) तथा स्थानकवासी ३२ आगम (११ अंग + १२ उपांग + ४ मूल + ४ छेद + १ आवश्यक सूत्र) मानते हैं। तथा दिगम्बर परम्परा बारहवें अंग दृष्टिवाद पर आधारित कसायपाहुड, षट्खण्डागम आदि के अतिरिक्त अंग आगमों को विलुप्त मानती है।

प्रोफेसर सागर मल जैन ने प्रकीर्णक की दस संख्या सम्बन्धी मान्यता को परवर्ती माना है तथा अंग आगम-साहित्य के अतिरिक्त सम्पूर्ण अंग बाह्य साहित्य को प्रकीर्णक के अन्तर्गत मानने का पक्ष प्रस्तुत किया है तथा प्रकीर्णक शब्द का तात्पर्य 'विविधग्रंथ' किया है।[८] जौहरी मल पारख ने प्रकीर्णक शब्द को पारिभाषिक प्रयोग कहकर प्रकीर्णक नाम से अभिहित ग्रन्थ को प्रायः एक सुसंहत विषयवस्तु वाला माना है, उन्होंने प्रकीर्णक शब्द को विस्तृत, विविध, मिक्सचर आदि सामान्य अर्थ में प्रयुक्त नहीं माना है[९] प्रकीर्णकों की संख्या के विषय में मतैक्य नहीं है। यद्यपि मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर परम्परा में प्रकीर्णकों की सख्या १० मान्य है, किन्तु इनमें कौनसे ग्रन्थ समाहित हों इस विषय में मतभेद है। ४५ आगमों में निम्नलिखित १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकीर्णक माने जाते है:— १. चतु:शरण २. आतुरप्रत्याख्यान ३. महाप्रत्याख्यान ४. भक्तपरिज्ञा ५. तन्दुलवैचारिक ६. संस्तारक ७. गच्छाचार ८. गणिविद्या ९. देवेन्द्रस्तव १०. मरणसमाधि[१०]।

मुनि पुण्यविजय ने चार अलग–अलग सन्दर्भों में प्रकीर्णकों की अलग–अलग सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।[११] कुछ ग्रन्थों में गच्छाचार और मरण समाधि के स्थान पर चन्द्रवेध्यक और वीरस्तव को गिना गया है, कहीं भक्तपरिज्ञा के स्थान पर चन्द्रवेध्यक को गिना गया है।[१२] इसके अतिरिक्त एक ही नाम के अनेक प्रकीर्णक भी उपलब्ध होते हैं यथा 'आउर पच्चक्खाणं'। आतुर प्रत्याख्यान के नाम से तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

मुनि पुण्यविजय के अनुसार प्रकीर्णक नाम से अभिहित २२ ग्रन्थ हैं:—(१) चतु:शरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) भक्तपरिज्ञा (४) संस्तारक (५) तंदुलवैचारिक (६) चन्द्रवेध्यक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान (१०) वीरस्तव (११) ऋषिभाषित (१२) अजीवकल्प (१३) गच्छाचार (१४) मरणसमाधि (१५) तीर्थोद्‌गालिक (१६) आराधनापताका (१७)द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८) ज्योतिष्करण्डक (१९) अंगविद्या (२०) सिद्धप्राभृत (२१) सारावली (२२) जीवविभक्ति

नंदी और पाक्षिकसूत्र में उत्कालिक सूत्रविभाग में देविंदत्थय, तंदुलवेयालिय, चंदावेज्झय, गणिविज्जा, मरणविभत्ति — मरणसमाहि, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, ये सात नाम और कालिक सूत्रविभाग में इसिभासियाइं, दीवसागरपण्णत्ति ये दो नाम इस प्रकार ९ नाम पाये जाते हैं। कतिपय प्रमुख प्रकीर्णकों का परिचय प्रस्तुत है:—

1. देविंदत्थओ – देवेन्द्रस्तव :—

नंदिसूत्र और पाक्षिक सूत्र में निर्दिष्ट देवेन्द्रस्तव कुल ३११ गाथाओं में निबद्ध है। अत्यन्त ऋद्धि सम्पन्न देवगण भी सिद्धों की स्तुति करते हैं यही इस ग्रन्थ का सारांश है। संवत् ११८० में रचित आचार्य श्री यशोदेवसूरि कृत पाक्षिकवृत्ति में इसका परिचय उपलब्ध है :— 'देविंदत्थओ त्ति देवेन्द्राणां चमरवैरोचनादीनाम् स्तवनं–भवन–स्थित्यादि स्वरूपादिवर्णनं यत्रासौ देवेन्द्रस्तव इति।'' देवलोकों का वर्णन और इन्द्रों द्वारा स्तुत्य इस प्रकार समासविग्रह परक दोनों विषयों का वर्णन इस ग्रन्थ में है।

विषयवस्तु:—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में शास्त्रज्ञाता कोई श्रावक अपने घर में प्रात: स्तुति करता है और उसकी पत्नी हाथ जोड़े सुनती है। श्रावक के वक्तव्य में बत्तीस देवेन्द्र आते हैं जिन्हें लक्ष्य कर श्रावक पत्नी देवेन्द्रों के नाम, स्थान, स्थिति, भवनपरिग्रह, विमान संख्या, भवन संख्या, नगर संख्या, पृथ्वी बाहुल्य, भवनादि की ऊँचाई, विमानों के वर्ण, आहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण, उच्छ्वास–निःश्वास और अवधिज्ञान से सम्बन्धित तेरह प्रश्न पूछती है (गाथा ७ से ११)। श्रावक विस्तार से उनके उत्तर देता है (गाथा १२ से २७६)। तदुपरान्त गाथा २७७ से २८२ में ईषत्प्राग्भारपृथ्वी का वर्णन है। २८३ से ३०९ तक की गाथाओं में सिद्धों के स्थान–संस्थानादि, उपयोग, सुख तथा ऋद्धि का निरूपण है तथा अन्त में ३१०–३११ में उपसंहार तथा प्रस्तुत प्रकीर्णक के कर्ता इसिवालिय – ऋषिपालित स्थविर का नामोल्लेख है।

देवेन्द्रस्तव की विषयवस्तु आगम-साहित्य में स्थानांगसूत्र, समवायांगसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जीवाभिगमसूत्र आदि में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होने से तुलनीय है।[१३] एक उदाहरण प्रस्तुत है :–

तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ३।।
छायाला ४ छतीसा ५–१० उत्तरओ होंति भवणाइं।।
(प्रज्ञापना सूत्र १८७, गाथा १४१)

तीसा चत्तालीसा चउतीसं चेव सयसहस्साइं।
छत्तीसा छायाला उत्तरओ हुँति भवणाइं।। (देविंदत्थओ, गाथा ४२)

अर्थात् उत्तर दिशा की ओर (असुर कुमारों के) तीस लाख, (नाग कुमारों के) चालीस लाख, (सुपर्ण कुमारों के) चौंतीस लाख, (वायु कुमारों के) छियालीस लाख और (द्वीप, उदधि, विद्युत, स्तनित एवं अग्नि – इन पाँच कुमारों के, प्रत्येक के) छत्तीस लाख भवन होते हैं।

2.तंदुलवेयालिय पइण्णय[१४] :–

तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक एक गद्य–पद्य मिश्रित रचना है। गद्य आलापक भगवती से भी लिये गये हैं। इसका सर्वप्रथम उल्लेख नंदी एवं पाक्षिक सूत्र में प्राप्त होता है। नंदीसूत्रचूर्णि और वृत्ति में इसका परिचय नहीं दिया गया है, किन्तु पाक्षिक सूत्र की वृत्ति में परिचय में कहा गया है कि सौ वर्ष की आयुवाला मनुष्य जितना चावल प्रतिदिन खाता है उसकी जितनी संख्या होती है उसी के उपलक्षण रूप (प्रत्येक विषय की) संख्या विचार को तंदुल वैचारिक कहते हैं।[१५] आवश्यक चूर्णि तथा निशीथ–सूत्र चूर्णि में इस प्रकीर्णक का उल्लेख उत्कालिक सूत्र के रूप में हुआ है। दशवैकालिक चूर्णि में जिनदासगणि महत्तर ने "कालदसा 'बाला मंदा, किड्डा' जहा 'तंदुलवेयालिए" कहकर तंदुल वैचारिक का उल्लेख किया है।[१६] तंदुलवैचारिक के वर्णनों में स्थानांग, भगवती, अनुयोगद्वार और औपपातिक सूत्र आदि के अंशों से साम्य होने तथा भाषा विषयक अध्ययन एवं अन्य ग्रन्थों में इस प्रकीर्णक के उल्लेखों के आधार पर विद्वानों ने इसका समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईसवी सन् की प्रथम शती से लेकर पाँचवी शती के बीच माना है।[17]

विषयवस्तुः– तंदुलवैचारिक में प्राणिविज्ञान सम्बन्धी कई प्रासंगिक बातों का समावेश किया गया है। इसके प्रारम्भ में गर्भावस्था की अवधि, गर्भोत्पत्तियोग्य योनि का स्वरूप, स्त्रीयोनि तथा पुरुषवीर्य का प्रम्लानकाल, गर्भोत्पत्ति एवं गर्भगत जीव का विकास क्रम, गर्भगत जीव का आहार परिणाम, गर्भगत जीव के माता और पिता सम्बन्धी अंग, गर्भावस्था में मरने वाले जीव की गति, गर्भ के चार प्रकार, गर्भनिष्क्रमण, गर्भवास का स्वरूप, मनुष्य की सौ वर्ष की आयु का दस दशाओं में विभाजन का वर्णन, जीवन की दस दशाओं में सुख दुःख के विवेकपूर्वक धर्मसाधना का उपदेश, वर्तमान मनुष्यों के देह–संहनन का ह्रास, धार्मिक जन की प्रशंसा आदि का विस्तृत निरूपण किया गया है।

इस ग्रन्थ में सौ वर्ष के व्यक्ति द्वारा साढ़े बाईस वाह (संख्या विशेष) तंदुल खाये जाने का वर्णन कर उस व्यक्ति द्वारा खाये जाने वाले स्निग्ध द्रव्य और लवण का माप तथा उसके परिधान वस्त्रों का प्रमाण भी बताया है।[18] समय, आवलिका आदि काल मान तथा कालमानदर्शक घड़ी को बताने के लिये घड़ी बनाने की विधि बताई है। तदनन्तर एक वर्ष के मास, पक्ष और अहोरात्र का परिमाण तथा अहोरात्र, मास, वर्ष और सौ वर्ष के उच्छ्वास की संख्या बताई गई है। अन्त में अनित्यता का स्वरूप, शरीर का स्वरूप उसका असुन्दरत्व और अशुभत्व, अशुचित्व आदि का निरूपण किया गया है। स्त्री के अंगोपांगों का निरूपण कर वैराग्य उत्पत्ति हेतु नाना प्रकार से उसे अशुचि और दोषों का स्थान बताया है। धर्म के माहात्म्य का प्रतिपादन करते हुए उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस शरीर का गणित से अर्थ प्रकट कर दिया है अर्थात् विश्लेषण करके उसके स्वरूप को बता दिया है, जिसे सुनकर जीव सम्यक्त्व और मोक्षरूपी कमल को प्राप्त करता है।

इस ग्रन्थ की अद्वितीय और दुर्लभ विशेषता है कि इसमें सभी विषयों को पहले व्यवहार गणित द्वारा देखा गया है तदनन्तर उसे सूक्ष्म और निश्चयगत गणित से समझने का प्रयोजन प्रस्तुत किया गया है।[19]

३ चंदावेज्झयं पइण्णयं[20] :–

चन्द्रावेध्यक प्रकीर्णक :– इसे चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक भी कहते हैं। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक की अनेक गाथाएँ आगमों में – उत्तराध्ययन, ज्ञाताधर्मकथा और अनुयोगद्वार में; निर्युक्तियों में – आवश्यकनिर्युक्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति, दशवैकालिकनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति में; प्रकीर्णकों में–मरणविभक्ति, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, तित्थोगाली, आराधनापताका एवं गच्छाचार में; तथा यापनीय एवं दिगम्बरपरम्परा मान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों में – भगवती आराधना, मूलाचार, नियमसार, अष्टपाहुड (सुत्तपाहुड) में; तथा भाष्य साहित्य में – विशेषावश्यकभाष्य में मिलती हैं।[२१]

चन्द्रावेध्यक प्रकीर्णक एक पद्यात्मक रचना है। इसमें कुल १७५ गाथाएँ हैं। चन्द्रावेध्यक का उल्लेख नंदिसूत्र एवं पाक्षिक सूत्र तथा नंदिचूर्णि, आवश्यकचूर्णि और निशीथचूर्णि में मिलता है। इसका परिचय पाक्षिक सूत्र की वृत्ति में इस प्रकार दिया है–''चंदावेज्झयं ति इह चन्द्र–यन्त्रपुत्रिकाक्षिगोलको गृह्यते, तथा आ मर्यादया विध्यते इति आवेध्यम्, तदेवावेध्यकम्, चन्द्रलक्षणमावेध्यकं चन्द्रावेध्यकम्, राधावेध इत्यर्थः। तदुपमानमरणाराधना–प्रतिपादको ग्रन्थविशेषः चन्द्रावेध्यकमिति ''(पत्र ६३) अर्थात् जिस प्रकार स्वयंवर में ऊँचे खम्भे पर घूमती हुई पुत्तलिका की आँख को बेधने के लिये अत्यन्त सावधानी तथा अप्रमत्तता की प्रधानता होती है तथैव मरण समय की आराधना में आत्मकल्याण के लिये अत्यन्त सावधानी और अप्रमत्तता होनी चाहिये। चंद्रावेध्यक को राधावेध की उपमा दी गई है क्योंकि इस ग्रन्थ में जो आचार के नियम आदि बताए गए हैं उनका पालन करना चन्द्रकवेध (राधावेध) के समान ही कठिन है।

विषयवस्तुः– इस ग्रन्थ में सात द्वारों से निम्न सात गुणों का वर्णन किया गया हैं – (१) विनयगुण (२) आचार्य गुण (३) शिष्य गुण (४) विनयनिग्रह गुण (५) ज्ञान गुण (६) चारित्रगुण (७) मरणगुण।

विनयगुण का निरूपण गाथा ४ से २१ में हुआ है। विद्याप्रदाता गुरु का अनादर करने वाले अविनीत शिष्य की विद्या निष्फल होती है तथा वह संसार में अपकीर्ति का भागी बनता है। अविनीत शिष्य के दोषों तथा विनीत शिष्य के गुण और उससे लाभ का अत्यन्त हृदयहारी चित्रण इसमें हुआ है। विद्या और गुरु का तिरस्कार करने वाले अविनीत शिष्य को ऋषिघातक तक कहा हैः–

विज्जं परिभवमाणो आयरियाणं गुणेऽपयासिंतो।
रिसिघायगाण लोयं वच्चइ मिच्छत्तसंजुत्ते।। गाथा,1.

यहाँ विनय का अर्थ विद्या से लिया गया प्रतीत होता है जैसा कि महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग में ''प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि स पिता'' कहकर विनय का अर्थ विद्या–शिक्षा किया है। विद्या–शिक्षा आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था राजा के द्वारा की जाने से राजा को प्रजा का पिता कहा है। आचार्यगुण का निरूपण गाथा २२ से ३६ तक हुआ है जिनमें आचार्य को पृथ्वी सम सहनशील, मेरु सम अकंप, धर्म में स्थित, चंद्र सम सौम्य; शिल्पादि कला पारंगत तथा परमार्थ प्ररूपक प्रस्तुत किया गया है जिनका आदर करने से होने वाले लाभों का भी उल्लेख किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्यगुण – लघुतावाला, विनीत, ममत्ववाला, गुणज्ञ, सुजन, सहनशील, आचार्य के अभिप्राय का ज्ञाता तथा षड्विध विनय को जानने वाला, दस प्रकार की वैयावृत्य में तत्पर, स्वाध्यायी आदि शिष्यगुणों का निरूपण गाथा ३७ से ५३ तक किया गया है।

विनयनिग्रह गुण के माध्यम से गाथा ५४ से ६७ में विनयगुण को मोक्ष का द्वार बताया गया है। बहुश्रुत होने पर भी विनयहीन होने पर वह अल्पश्रुत पुरुष की श्रेणी में ही परिगणित होता है। अंधपुरुष के सामने लाखों दीपक के निरर्थक होने के समान विनयहीन द्वारा जाना गया विपुल श्रुत भी निरर्थक कहा गया है। इसी प्रकार क्रमशः ज्ञानगुण (गाथा ६८ से ९९), चारित्रगुण (गाथा १००–११६) तथा मरणगुण (गाथा ११७–७३) आदि का यथार्थ निरूपण प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान और चारित्रयुक्त पुरुष धन्य हैं, गृहपाश के बंधनों से मुक्त होकर जो पुरुष प्रयत्नपूर्वक चारित्र का सेवन करते हैं वे धन्य हैं। अनियंत्रित अश्व पर आरूढ़ होकर बिना तैयारी के यदि कोई शत्रु सेना का मुकाबला करता है तो वह योद्धा और अश्व दोनों संग्राम में पराजित होते हैं तथैव मृत्यु के समय पूर्व तैयारी के बिना परीषह सहन असंभव है ऐसा निर्देश कर चन्द्रावेध्यक नाम को सार्थक करते हुए इस प्रकीर्णक में मृत्यु पूर्व साधना का विस्तार से निरूपण किया है।[२२] अन्यत्र चित्त रूपी दोष के कारण यदि कोई व्यक्ति थोड़ा भी प्रमाद करता है तो वह धनुष पर तीर चढ़ाकर भी चन्द्रवेध को नहीं वेध पाता है। चन्द्रवेध की तरह मोक्ष मार्ग में प्रयत्नशील आत्मा को सदैव ही अप्रमादी होकर निरन्तर गुणों की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये।[२३]

४. **गणिविज्जा**[२४] :–

गणिविद्या प्रकीर्णक का उल्लेख, नंदिसूत्र तथा पाक्षिक सूत्र में है। नंदिसूत्र की चूर्णि में इसका परिचय निम्न प्रकारेण है :–

"सबालवुड्ढाउलो गच्छो गणो, सो जस्स अत्थि सो गणी, विज्जत्तिणाणं, तं च जोइसनिमित्तगतं णातुं पसत्थेसु इमे कज्जे करेति, तंजहा– पव्वावणा १ सामाइयारोवणं २ उवट्ठावणा ३ सुत्तस्स उद्देस – समुद्देसाऽणुण्णातो ४ गणारोवणं ५ दिसापुण्णा ६ खेत्तेसु य णिग्गमपवेसा ६ एवमाइयाकज्जा जेसु तिहि–करण–णक्खत्त मुहुत्तजोगेसु य जे जत्थ करणिज्जा ते जत्थअज्झयणे वण्णिजंति तमज्झयणं गणिविद्या" अर्थात्–गण का अर्थ है समस्त बालवृद्ध मुनियों का समूह। जो ऐसे गण का स्वामी है वह गणी कहलाता है। विद्या का अर्थ होता है – ज्ञान। ज्योतिषनिमित्त विषयक ज्ञान के आधार पर जिस ग्रन्थ में दीक्षा, सामायिक का आरोपण, व्रत में स्थापना, श्रुत सम्बन्धित उपदेश, समुद्देश, अनुज्ञा, गण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का आरोपण, दिशानुज्ञा, निर्गम (विहार), प्रवेश आदि कार्यों के सम्बन्ध में तिथि, करण, नक्षत्र, मुहूर्त एवं योग का निर्देश हो वह गणिविद्या कहलाता है। (नन्दिसुत्तं प्रा.टे.सो; अहमदाबाद, पृ० ७१)

विषयवस्तु:– गणिविद्या प्रकीर्णक में नौ विषयों का निरूपण है :– दिवसतिथि नक्षत्र, करण, ग्रह, मुहूर्त, शकुनबल, लग्नबल और निमित्तबल। इसमें दिवस के बलाबल विधि का निरूपण है। चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना जाता है। इन तिथियों का नामकरण नन्दा, भद्रा, विजया, रिक्ता, पूर्णा आदि रूपों में किया गया है। तारों के समुदाय को नक्षत्र कहते हैं। इन तारा समूहों से आकाश में बनने वाली अश्व, हाथी, सर्प, हाथ आदि की आकृतियों के आधार पर नक्षत्र का नामकरण किया जाता है। तिथि के आधे भाग को करण कहते है। जिस दिन की प्रथम होरा का जो गृहस्वामी होता है उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार (दिवस) रहता है ये सात हैं — रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि। तीस मुहूर्त का एक दिन—रात होता है। प्रत्येक कार्य को करने के पूर्व घटित होने वाले शुभत्व या अशुभत्व का विचार करना शकुन कहलाता है। लग्न का अर्थ है — वह क्षण जिसमें सूर्य का प्रवेश किसी राशि विशेष में होता है। लग्न के आधार पर किसी कार्य के शुभ—अशुभ फल का विचार करना लग्न शास्त्र कहा जाता है। भविष्य आदि जानने के प्रकार को निमित्त कहा जाता है। गणिविद्या प्रकीर्णक मे दैनंदिन जीवन के व्यवहार, गमन, अध्ययन, स्वाध्याय, दीक्षा, व्रतस्थापन आदि के लिए उपयोगी एवं अनुपयोगी दिवस, तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रह मुहूर्त, शकुन, लग्न और निमित्तों का निरूपण किया गया है तथा इन्हे उत्तरोत्तर बलवान कहा है।

गणिविद्या प्रकीर्णक और अन्य आगम एवं ज्योतिष ग्रन्थों क तुलनात्मक विवरण गणिविज्जापइण्णयं में दिया गया है।

५.मरणविभत्ति पइण्णय:–

मरणविभक्ति प्रकीर्णक को मरणसमाधि प्रकीर्णक नाम से भी जान जाता है, जिसमें कथाओं के प्रसंग से अन्त समय की साधना का निरूपण है इसका परिचय नंदिसूत्र की चूर्णि और वृत्ति में प्रायः समान रूप से मिलता है कि 'मरण का अर्थ है पाप त्याग। मरण के प्रशस्त और अप्रशस्त इन दो भेदे का जिसमें विस्तार से वर्णन है वह अध्ययन मरण-विभक्ति कहलाता है।[२७] पाक्षिक सूत्र में उक्त परिचय देते हुए मरण के सत्रह भेद बताए गए हैं।[२८] परम्परागत मान्य दस प्रकीर्णकों में यह सबसे बड़ा है। इसमें ६६१ गाथाएँ हैं ग्रन्थकार के अनुसार (१) मरणविभक्ति (२) मरणविशोधि (३) मरणसमाधि (४) संलेखनाश्रुत (५) भक्तपरिज्ञा (६) आतुरप्रत्याख्यान (७) महाप्रत्याख्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८) आराधना इन आठ प्राचीन श्रुतग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत प्रकीर्णक की रचना हुई है।

विषयवस्तु :– दर्शन–आराधना, ज्ञान–आराधना और चारित्र आराधना ये आराधना के तीन भेद हैं। तत्वार्थ श्रद्धा के बिना जीव भूतकाल में अनन्त बार बालमरण से मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं ऐसा कहकर गाथा २२ से ४४ तक पंडितमरण का संक्षिप्त निरूपण किया है। मन में शल्य रखकर मृत्यु प्राप्त करने वाले जीव दुःखी होते हैं, इसके विपरीत अहंकारत्यागपूर्वक चारित्र और शील से युक्त जो समाधिभरण प्राप्त करते हैं वे आराधक होते हैं।

इसमें समाधिमरण विधि का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। समाधिमरण के कारणभूत चौदह द्वार – आलोचना, संलेखना, क्षमापना, काल, उत्सर्ग, उद्ग्रास, संथारा, निसर्ग, वैराग्य, मोक्ष, ध्यान विशेष, लेश्या, सम्यक्त्व, पादोपगमन – का निरूपण है। आलोचना के दस दोष, तप के भेद, चारित्र के गुण, आत्मविशुद्धि के उपायों का विस्तार से वर्णन है। आराधना के तीन प्रकार (उत्कृष्टा–मध्यमा–जघन्या), चार स्कन्ध (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप) का वर्णन है। निर्यापक आचार्य का स्वरूप विस्तार से बताया है। शरीर से ममत्व त्याग, परीषहजय तथा अशुभध्यान–त्याग सम्बन्धी दृष्टान्तों से विषयवस्तु को पुष्ट किया है। विविध उपसर्ग सहन के उल्लेखों में प्रमुख हैं– जिनधर्मश्रेष्ठी, मेतार्यऋषि, चिलातीपुत्र, गजसुकुमाल, सागरचंद्र, अवंतीसुकुमाल, चंद्रावतंसकनृप, दमदान्त महर्षि, खंदकमुनि, धन्यशालिभद्र, पाँच पाण्डव, दंड अनगार, सुकोशल मुनि, वज्रर्षि, अर्हन्नक, चाणक्य तथा इलापुत्र। २२ परीषह सहन करने सम्बन्धी उदाहरणों में हस्तिमित्र, धनमित्र, आर्य श्री भद्रबाहुशिष्य – मुनि चतुष्क आदि बाईस दृष्टान्त दिये हैं जो प्रायः उत्तराध्ययन सूत्र की नेमिचन्द्रीय टीका में हैं।[३०] धर्म पालन करने वाले मत्स्यादि तिर्यंचों के उदाहरण भी दिये हैं। मरणविभक्ति की गाथा ५२५ से ५५० में पादपोपगमन मरण का स्वरूप निरूपण है। ५७० से ६४० गाथा में बारह भावना का विस्तृत विवेचन है और अन्त में निर्वेदजनक उपदेशपूर्वक पंडित मरण का निरूपण कर धर्मध्यान और शुक्लध्यान का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

६.**आउरपच्चक्खाणं**[३१] –

आतुरप्रत्याख्यान – पइण्णयसुत्ताइं ग्रन्थ में (पृ. १६०,३०५,३२९) पर प्रकाशित आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक नाम के तीन प्रकीर्णक सूत्र हैं। इनमें से अन्तिम वीरभद्रकृत प्रकीर्णक में ७१ गाथाएँ हैं। इसे अन्तकाल प्रकीर्णक या बृहदातुर प्रत्याख्यान भी कहते हैं। दसवीं गाथा के पश्चात् कुछ गद्यांश भी हैं। मरण के तीन भेद (बालमरण, बालपंडितमरण, पंडितमरण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के निरूपण के अतिरिक्त इसमें एकत्व भावना, प्रतिक्रमण, आलोचना, क्षमापना का भी निरूपण है। असमाधिपूर्वक मरण प्राप्त करने वाले आराधक नहीं कहे जाते। शस्त्रग्रहण, विषभक्षण, आग से जलना, जल में प्रवेश आदि से मरना बालमरण में परिगणित किया है। पंडितमरण की आराधना-विधि का वर्णन कर मरणकाल में प्रत्याख्यान करने वाले को धीर, ज्ञानी और शाश्वत स्थान प्राप्त करने वाला कहा है। ''आउरो – गिलाणो, तं किरियातीतं णातुं गीयत्था पच्चक्खावेंति, दिणे दिणे दव्वहासं करेंता अंते य सव्वदव्वदातणताए भत्ते वेरग्गं जणेंता भत्ते नित्तण्हस्स भवचरिमपच्चक्खाणं कारेंति एतं जत्थऽज्झयणे सवित्थरं वण्णिज्जइ तमज्झयणं आउरपच्चक्खाणं'' नंदिसूत्र चूर्णि के इस परिचय का अर्थ ही इस प्रकीर्णक का सारांश है कि जिसे असाध्य रोग हो ऐसे आतुर (बीमार) मुनि को गीतार्थ पुरुष प्रतिदिन खाद्य द्रव्य कम कराकर प्रत्याख्यान कराता है, अंत में बीमार मुनि आहार के विषय में वैराग्य पाकर अनासक्त हो जाय तब जीवनपर्यन्त आहार त्याग का प्रत्याख्यान कराने का वर्णन जिसमें है वह आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक है।

७.**महापच्चक्खाण**[३२] :–

महाप्रत्याख्यान–नंदिसूत्रचूर्णि में उपलब्ध महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक के परिचय के अनुसार जो स्थविरकल्पी जीवन की अन्तिम वेला में विहार करने में असमर्थ होते हैं उनके द्वारा जो अनशन व्रत (समाधिमरण) स्वीकार किया जाता है, उन सबका जिसमें विस्तृत वर्णन हो उसे महाप्रत्याख्यान कहते हैं। महाप्रत्याख्यान में कुल १४२ गाथाएँ हैं, जिनमें दुश्चरित्र त्याग की विविध प्रतिज्ञा, सर्वजीवक्षमापना, निंदा–गर्हा–आलोचना, ममत्वछेद, आत्मधर्मस्वरूप, मूलगुण उत्तरगुण की विराधना की निंदा, एकत्व भावना, मिथ्यात्वमाया त्याग, आलोचक स्वरूप और उसका मोक्षगामित्व, आराधना का महत्त्व, भेद आराधनापताका प्राप्ति आदि विविध विषयों का विवेचन किया गया है। सभी जीवों के प्रति क्षमापना, धीर मरण की प्रशंसा और प्रत्याख्यान का फल इस प्रकीर्णक के मुख्य विषय हैं।

८.**इसिभासियाइं**–

ऋषिभाषित–यह प्रकीर्णक साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ है – **ऋषिभाषित प्रकीर्णक** सूत्र में ४५ **ऋषियों** के उपदेश रूप ४५ **अध्ययन** हैं। ये ४५ ऋषि प्रत्येक बुद्ध थे। इनमें बीस नेमिनाथ के शासनकाल में, पन्द्रह पार्श्वनाथ के शासनकाल में और दस वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासनकाल में होने का उल्लेख **इसिभासियाणं संगहणी** के प्रथम श्लोक में है।[३३] ग्रन्थ में इन पैंतालीस ऋषियो के उपदेशों का संकलन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्याय में देव—ऋषि नारद के उपदेशों में अहिंसा—सत्य—अस्तेय तथा ब्रह्मचर्य अपरिग्रह को मिलाकर एक इस प्रकार चार शौच का वर्णन है। साधक को सत्यवादी, दत्तभोजी और ब्रह्मचारी होने के निर्देश हैं। **द्वितीय अध्याय** में वज्जीयपुत्त (वात्सीयपुत्र) के उपदेश— कर्म ही जन्ममरण का हेतु है, ज्ञान और चित्त की शुद्धि से कर्म—सन्तति का क्षय और निर्वाण प्राप्ति — का वर्णन है। **तृतीय अध्याय** में असित दैवल के कषायविजय उपदेश का अंकन है। असित दैवल जैन, बौद्ध, औपनिषदिक तीनों धाराओं में मान्य हैं। **चतुर्थ अध्याय** में अंगिरस भारद्वाज मनुष्य को दोहरे जीवन को छोड़कर अन्तर की साधु मनोवृत्ति अपनाने का उपदेश देते हैं। **पंचम अध्याय** में पुष्पशालपुत्र समाधिमरण एवं आत्मज्ञान द्वारा समाधि प्राप्ति का उपदेश देते हैं।[३५] **छठे वल्कलचीरी अध्याय** में नारी के दुर्गुणों की चर्चा है। **सातवें कुम्मापुत्त (कूर्मापुत्र) अध्याय** में कामना—परित्याग का निरूपण हैं। **आठवें केतलिपुत्र अध्याय** में रागद्वेष रूपी ग्रन्थि छेद का वर्णन है। **नवें महाकाश्यप अध्याय** में कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या की है। **दसवें तेतलिपुत्र अध्याय** में अनास्था और अविश्वास को वैराग्य का कारण बताया है। **ग्यारहवें मंखलिपुत्र अध्ययन** में तारणहारी गुरू का स्वरूप वर्णित है। **बारहवें से लेकर पैंतालीसवें अध्याय** तक क्रमश: निम्न ऋषियों के उपदेश संकलित हैं' (१२) याज्ञवल्क्य (१३)भयालि (१४) बाहुक (१५) मधुरायन (१६) शौर्यायण (१७) विदुर (१८) वारिषेण (१९) आर्यायण (२०) (ऋषि का उल्लेख नहीं) (२१) गाथापतिपुत्र (२२) गर्दभालि (२३) रामपुत्र (२४) हरिगिरि (२५) अम्बड (२६) मातंग (२७) वारत्तक (२८) आर्द्रक (२९) वर्द्धमान (३०) वायु (३१) अर्हत् पार्श्व (३२) पिंग (३३) महाशालपुत्र (३४) ऋषिगिरि (३५) उद्दालक (३६) नारायण (३७) श्रीगिरि (३८) सारिपुत्र (३९) संजय (४०) द्वैपायन (४१) इन्द्रनाग (४२) सोम (४३) यम (४४) वरुण (४५) वैश्रमण। इन पैंतालीस ऋषियों को 'अर्हत् ऋषि-मुक्त — मोक्ष प्राप्त कहा गया है।

समवायांग सूत्र के ४४ समवाय में ऋषिभाषित के ४४ अध्यायों का उल्लेख है। इससे इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है।[३६] जैन—बौद्ध—आर्य तीनों दर्शनों के उपदेशों के मेल का यह अनूठा संग्रह है।

९ **दीवसागरपण्णत्तिसंगहणीगाहाओ**[३७] :— द्वीपसागर प्रज्ञप्ति प्रकीर्णक में २२५ गाथाएँ हैं। सभी गाथाएँ मध्यलोक में मनुष्य क्षेत्र अर्थात् ढ़ाई द्वीप के आगे के द्वीप एवं सागरों की संरचना को प्रकट करती हैं। ग्रन्थ के समापन में कहा गया है कि जो द्वीप और समुद्र जितने लाख योजन विस्तार वाला होता है वहाँ उतनी ही चन्द्र और सूर्यों की पंक्तियाँ होती हैं।[३८]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०.**वीरत्थव**[३९] :—

वीरस्तव — ४३ गाथाओं में रचित इस वीरस्तव प्रकीर्णक में महावीर की स्तुति उनके छब्बीस नामों द्वारा की गई है। इसमें २६ नामों का अलग—अलग अन्वयार्थ भी बताया गया है। प्रथम गाथा मंगल और अभिधेय रूप है, तदुपरान्त महावीर के निम्न २६ नामों का उल्लेख है :—

(१)	अरूह	(२)	अरिहंत
(३)	अरहंत	(४)	देव
(५)	जिण	(६)	वीर
(७)	परमकारुणिक	(८)	सर्वज्ञ
(९)	सर्वदर्शी	(१०)	पारग
(११)	त्रिकालविद्	(१२)	नाथ
(१३)	वीतराग	(१४)	केवली
(१५)	त्रिभुवनगुरु	(१६)	सर्व
(१७)	त्रिभुवन वरिष्ठ	(१८)	भगवान्
(१९)	तीर्थंकर	(२०)	शक्रनमस्कृत
(२१)	जिनेन्द्र	(२२)	वर्द्धमान
(२३)	हरि	(२४)	हर
(२५)	कमलासन और	(२६)	बुद्ध

वर्द्धमान महावीर के २६०० वें जन्म-महोत्सव के उपलक्ष्य में जैन आगम-परिचय के प्रसंग में प्रमुख प्रकीर्णकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। शेष प्रकीर्णकों हेतु उदयपुर आगम संस्थान ग्रन्थमाला के अन्य प्रकाशन अवलोकनीय हैं। मरणविभत्तिपइण्णयं का अनुवाद एवं सम्पादन इस लेख की लेखिका द्वारा किया जा रहा है।

प्रकीर्णकों में प्रायः एक सुसंहत विषय का निरूपण है, अतः इनका स्वाध्याय उपयोगी होगा। प्रकीर्णकों की गाथाओं के सन्दर्भ अंगों में, अंग बाह्य आगमों में, श्वेताम्बर या दिगम्बर सर्वमान्य प्राचीन श्रेण्य ग्रन्थों व शास्त्रों में, व्याख्या-साहित्य में, जैनेतर ग्रन्थों आदि में उपलब्ध होने से प्रकीर्णक साहित्य विभिन्न सम्प्रदायों, आम्नायों, विचार—धाराओं को एक सूत्र में पिरोने में सहायक सिद्ध होंगे।

संदर्भ

१. नंदिसूत्रचूर्णि; (सम्पा.) मुनि पुण्यविजय, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद, १९६६, पृ. ६०

२. नंदिसूत्र; (सम्पा.) मुनिमधुकर, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सूत्र ८१, पृ. १६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. ठाणांग सूत्र ; आगमोदय समिति, सूरत, सूत्र ७५५
४. व्यवहार सूत्र; (सम्पा.) कन्हैयालाल कमल, आगम अनुयोग ट्रस्ट अहमदाबाद, उद्देशक १०
५. पाक्षिक सूत्र, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार समिति, पृ. ७६–७७
६. धवला पुस्तक १३/खण्ड V/भाग V/सूत्र ४८ पृ.२७६, उद्घृत जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग ४, पृ.७०
७. विधिमार्गप्रपा (सम्पा.) जिनविजय, पृ. ५७–५८
८. प्रकीर्णक साहित्य : मनन और मीमांसा; (सम्पा.) सागरमल एवं सुरेश सिसोदिया, आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, १९९५ में प्रकाशित लेख 'आगम साहित्य में प्रकीर्णकों का स्थान, महत्व रचनाकाल एवं रचयिता, पृ.२,३
९. —वही — 'प्रकीर्णकों की पाण्डुलिपियाँ और प्रकाशित संस्करण', पृ. ६८
१०. (अ) देवेन्द्र मुनि ; जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ.३८८
(ब) मुनि नगराज: आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ.४८६
(स) शास्त्री, डॉ. कैलाश चन्द्र : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.१९७
११. पइण्णयसुत्ताइं; (सम्पा.) मुनिपुण्यविजय, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९८४ भाग १, प्रस्तावना पृ. २१
१२. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग २, पृ. ४१
१३. कोठारी, सुभाष : देविंदत्थओ, आगम संस्थान ग्रन्थमाला, उदयपुर १९८८, भूमिका पृ. xxxiv से xxxxi
१४. कोठारी, सुभाष : तंदुलवेयालियपइण्णयं, आगम संस्थान ग्रन्थमाला, उदयपुर १९९१
१५. "तंदुलवेयालियं ति तन्दुलानां वर्षशतायुष्कपुरुषप्रतिदिनभोग्यानां संख्या विचारेणोपलक्षितो ग्रन्थविशेष: तन्दुलवैचारिकमिति।" पाक्षिकसूत्रवृत्ति, पत्र ६३
१६. (अ) आवश्यकचूर्णि, (सम्पा.)ऋषभदेव केशरीमल, श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, १९२९, भाग २, पृ.२२४
(ब) निशीथचूर्णि, भाग ४, पृ. २३५
(स) दशवैकालिकचूर्णि, रतलाम, १९३३, पृ. ५
१७. तंदुलवेयालियपइण्णयं, उदयपुर, पृष्ठ ८
१८. "तं एवं अद्धत्तेवीसं तंदुलवाहे भुंजंतो ——————— एयं गणियपमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं ..." तंदुलवेयालियपइण्णयं, ८०, पृ. ३२
१९. ववहारगणियदिट्ठं सुहुमं विनिच्छयगयं मुणेयव्वं।
जइ एयं न वि एयं विसमा गणणा मुणेयव्वा।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—तंदुलवेयालियपइण्णयं,८१पृ. ३३
२०. चंदावेज्झयं पइण्णयं (सम्पा.) सुरेश सिसोदिया, आगम संस्थान ग्रन्थमाला, ६, उदयपुर १९९१
२१. — वही—, प्रस्तावना पृष्ठ २२ से ३५
२२. — वही—, प्रस्तावना गाथा ११७ से ११९
२३. — वही—, प्रस्तावना गाथा १२९ से १३०
२४. गणिविज्जापइण्णयं (सम्पा.) सुभाष कोठारी, आगम संस्थान ग्रन्थमाला १०, उदयपुर १९९४
२५. नंदिसुत्तं, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद, पृ. ५८
२६. गणिविज्जापइण्णयं, भूमिका पृ. २२—२७
२७. 'मरणं पाणपरिच्चागो, विभयणं — विभत्ती, पसत्थमपसत्थाणि सभेदानि मरणाणि जत्थ वण्णिज्जंति अज्झयणे तमज्झयणं मरण विभत्ती' नंदिसूत्रचूर्णि, पृ.५८
२८. गणिविज्जापइण्णयं, आगम संस्थान, उदयपुर, भूमिका पृ. ४
२९. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर १९७७, पृ. ३८८
३० पइण्णयसुत्ताइं, भाग १, प्रस्तावना, पृ. ४०—४१
३१. आउरपच्चक्खाणं, पइण्णयसुत्ताइं, भाग १,— प्रस्तावना, पृ. ३२९ आदि
३२. महापच्चक्खाण, पइण्णयसुत्ताइं, भाग १,— प्रस्तावना, पृ. १६४ आदि
३३. पत्तेयबुद्धमिसिणो वीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स। पासस्स य पण्णरस वीरस्स विलीणमोहस्स।। इसिभासियाइं— पइण्णयसुत्ताइं, भाग १, पृ. १७९
३४. इसिभासियाइं—पइण्णयसुत्ताइं, भाग १, पृ. १८१—२५६
३५. इसिभासियाइं—पइण्णयसुत्ताइं, भाग १, पृ. १८१—१९०
३६. पइण्णयसुत्ताइं भाग १, प्रस्तावना, पृ. ४५
३७. (अ) पइण्णयसुत्ताइं भाग १, प्रस्तावना, पृ. ५३
(ब) दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं (सम्पा.) सुरेश सिसोदिया, आगम संस्थान, ग्रन्थमाला, ८, उदयपुर १९९३
३८. — वही—, गाथा, २२४—२२५, पृ० ४६.
३९. वीरत्थओ पइण्णयं (सम्पा.) सुभाष कोठारी, आगम संस्थान ग्रन्थमाला १२, उदयपर १९९५.

—निदेशक, कोटा खुला विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर
470, ओ.टी.सी.स्कीम, उदयपुर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org